नेताजी सुभाष की गाथा: 1941 से 1945 तक और उसके बाद...

नाज़-ए-हिन्द सुभाष

जयदीप शेखर

नाज़-ए-हिन्द सुभाष

नेताजी सुभाष की गाथा: 1941 से 1945 तक और उसके बाद...
खास तौर पर भारतीय किशोरों एवं युवाओं के लिए

जयदीप शेखर

PREVIEW COPY

जगप्रभा

Cover Photo

Netaji on German submarine (U180) during his voyage from Germany to Japan in 1943. He was given code-name of 'Mastuda' during this voyage. Aabid Hassan is sitting by the side of Netaji. This picture was published in a Bengali newspaper mentioning name of Shishir Bose as courtesy.

-: eBook :-

Naz-E-Hind Subhash: Subhash- the Pride of India

Saga of Netaji Subhash Chandra Bose from 1941 to 1945 and thereafter, especially for Indian juveniles and youth.

Author: Jaydeep Shekhar

1st Edition: 2012 | Revised 5th Edition: 2023

Copyright © Author

All rights reserved

Published by:

JAGPRABHA

Barharwa (Sahibganj), Jharkhand- 816101

jagprabha.in | jagprabha.bhw@gmail.com

Price: ₹ 100/-

Print version is available on Pothi.Com

1941		जियाउद्दीन
1942		काउण्ट ऑरलैण्डो माजोत्ता
1943		‘मस्तुदा’
1944		चन्द्र बोस
1945		‘खिल्सायी मलंग’ (?)
1964		रहस्यमयी सन्न्यासी (?)
1968		स्वामी शारदानन्द (?)
1985		‘गुमनामी बाबा’ (?)

प्राक्कथन

नेताजी सुभाष 17 जनवरी 1941 की रात भारत से निकले थे और 18 अगस्त 1945 के दिन अन्तर्धान हुए थे। इन दो तिथियों के बीच का कालखण्ड प्रायः चार वर्षों का है। इस दौरान नेताजी से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े बहुत-से ऐसे घटनाक्रम हैं, जिनके बारे में हम आम भारतीय- खास तौर पर देश की किशोर एवं युवा पीढ़ी वाले- बहुत कम जानते हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर इस पुस्तक की रचना की गयी है।

1941 से पहले के (उनसे जुड़े) कुछ घटनाक्रमों को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है- भूमिका के तौर पर। इसके विपरीत, 1945 के बाद के घटनाक्रमों को विस्तार दिया गया है। साथ ही, कुछ 'सम्भावित' घटनाक्रमों का भी जिक्र किया गया है। ऐसा इसलिए किया गया है कि पाठकगण उपलब्ध तथ्यों, साक्ष्यों, परिस्थितिजन्य साक्ष्यों एवं सम्भावनाओं को जानने के बाद स्वयं विश्लेषण करते हुए किसी निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश करें कि आखिर नेताजी का क्या हुआ होगा।

पुस्तक की भाषा शैली ऐसी रखी गयी है कि पढ़ते समय लगे कि घटनाएं हमारे समय में घट रही हैं- ऐसा न लगे कि हम सुदूर इतिहास की बातों को जान रहे हैं। कहीं-कहीं 'रिपोर्ताज'-जैसी शैली का उपयोग किया गया है। ऐसा किशोर एवं युवा वर्ग के पाठक-पाठिकाओं को ध्यान में रखकर किया गया है, जो 'थ्रिलर' पढ़ना पसन्द करते हैं। वैसे, पुस्तक सबके लिए है।

एक बात और। 1943 में सिंगापुर में भारतीय जनता नेताजी के स्वागत में जो गीत गाती थी, उसकी एक पंक्ति है- 'है नाज़ जिसपे हिन्द को, वे शाने-हिन्द आ गये'- इस लिहाज से पुस्तक का शीर्षक "शान-ए-हिन्द सुभाष" होना चाहिए था, पर किसी कारणवश इसे "नाज़-ए-हिन्द सुभाष" रखा जा रहा है।

-जयदीप शेखर

विषय सूची

प्राक्कथन 5

महानिष्क्रमण 8

17 जनवरी की वह रात 9

विश्वयुद्ध की पटकथा 10

एमिली शेंकेल प्रसंग 12

‘अपना रास्ता अलग चुन लो’ 14

अनशन और नजरबन्दी 16

‘कलकत्ता पहुँचो’- बोस 17

कलकत्ता से काबुल 19

“बोस को खोजो और मार डालो” 20

विश्वयुद्ध के साये में 22

काबुल से बर्लिनः वाया मास्को 23

‘इण्डियन लीजन’ के साथ भारत-प्रवेश की योजना 25

हिटलर से मोहभंग 31

पूरब में जापान की बादशाहत 35

जर्मनी से जापान 39

रासबिहारी बोस, कैप्टन मोहन सिंह तथा आई.एन.ए. 40

बर्लिन से टोक्योः तैयारियाँ 44

‘इण्डियन लीजन’ का क्या हुआ? 48

बर्लिन से टोक्योः दो पनडुब्बियों में नब्बे दिन 49

परिकथा के नायक 53

नेताजी और तोजो 54

सिंगापुरः “सुभाषजी आ गये” 56

आजाद हिन्द फौज 58

आरजी हुकुमत-ए-आजाद हिन्द 64

स्वतंत्रता संग्राम 70

‘ऑपरेशन यू-गो’: युद्ध की तैयारियाँ 71

मोयरांग में तिरंगा 77

एक त्रासद वापसी 88

विश्वयुद्ध का अवसान 100

यूरोप में विश्वयुद्ध की समाप्ती 101
जापान पर परमाणु बम 108
परमाणु बम पर अतिरिक्त जानकारी 113
अन्तर्धान 117
मगर नेताजी ने आत्म-समर्पण नहीं किया 118
वह रहस्यमयी विमान यात्राः सिंगापुर से ताईपेह तक 125
रहस्य का आवरण 129
वह रहस्यमयी विमान दुर्घटनाः गवाह जो कहते हैं 130
वह रहस्यमयी विमान दुर्घटनाः परिस्थितिजन्य साक्ष्य क्या कहते हैं 136
नेताजी सोवियत संघ में ही थेः परिस्थितिजन्य साक्ष्य 144
नेताजी सोवियत संघ में ही थेः 4 अनुमानित स्थितियाँ 154
प्रश्नचिह्न 159
आखिर क्या हुआ होगा नेताजी का? 160
अतिरिक्त जानकारीः स्तालिन का अन्त 172
आजाद हिन्द सैनिकों का क्या हुआ? 174
ऐसे आयी अजादी 180
गाँधी-नेहरू और सुभाष 187
तीनों जाँच आयोगों के बारे में 192
अधूरा स्वप्न 199
यह देश और इसकी नियति 200
अगर नेताजी दिल्ली पहुँच जाते तो... 201
नेताजी तथा धर्मः एक प्रसंग 203
नेताजी के सपने को पूरा करना है... 205
परिशिष्ट 208
पश्चकथन एवं कृतज्ञता-ज्ञापन 209
टिप्पणियाँ 211

महानिष्क्रमण

17 जनवरी की वह रात

नेताजी अफगानी पठान जियाउद्दीन की वेशभूषा में

तारीख- 17 जनवरी, 1941।

समय- 01:30 बजे। (16-17 जनवरी की मध्यरात्रि।)

स्थान- एल्गिन रोड, कोलकाता का एक तिमंजिला मकान।

कहीं से खाँसने की आवाज आती है और इसी के साथ मानो इन्तजार कर रहे तीन लोग दबे पाँव सक्रिय हो जाते हैं।

खाँसी की आवाज एक संकेत है कि रास्ता साफ है।

एक युवक चुपके से गेट खोलता है।

दूसरा युवक जर्मन कार 'वाँडरर' (नम्बर- बी.एल.ए. 7169) की ड्राइविंग सीट पर बैठकर इसे स्टार्ट करता है।

तीसरा युवक बन्द गले का कोट पहने एक दाढ़ी वाले पठान को दुमंजिले से उसके सामान सहित नीचे लाता है और कार की पिछली सीट पर बैठाता है।

कार गेट से बाहर निकल जाती है।

बाहर एल्गिन रोड तथा वुडबर्न रोड के चौराहे पर तैनात सी.आई.डी. वाले लकड़ी के कामचलाऊ तख्तों पर कम्बलों के बीच दुबक कर निश्चिन्त आराम कर रहे होते हैं।

कार हावड़ा ब्रिज होते हुए जी.टी. रोड पर आती है और शीघ्र ही आसनसोल की ओर फर्राटे भरने लगती है।

कार चलाने वाले युवक हैं- शिशिर कुमार बोस, घर में उनके जिन दो चचेरे भाईयों ने मदद की, वे थे- द्विजेन्द्र और ऑरोविन्दो बोस।

कार की पिछली सीट पर बैठे हैं- इन तीनों के चाचा, एक इंश्योरेन्स कम्पनी के ट्रैवेलिंग इंस्पेक्टर पठान जियाउद्दीन की वेशभूषा में- नेताजी सुभाष चन्द्र बोस।

विश्वयुद्ध की पटकथा

नेताजी यूरोप-प्रवास के दौरान

पिताजी का मन रखने के लिए 1920 में आई.सी.एस. (आज का आई.ए.एस.) अधिकारी बने नेताजी 1921 में ही नौकरी छोड़कर राजनीति में उतरते हैं।

ग्यारह बार गिरफ्तार करने के बाद ब्रिटिश सरकार उन्हें 1933 में 'देश निकाला' ही दे देती है। यूरोप में निर्वासन बिताते हुए वे अपनी यकृत की थैली की शल्य-चिकित्सा भी कराते हैं।

1934 में पिताजी की मृत्यु पर तथा 1936 में काँग्रेस के (लखनऊ) अधिवेशन में भाग लेने के लिए वे दो बार भारत आते हैं, मगर दोनों ही बार ब्रिटिश सरकार उन्हें गिरफ्तार कर वापस देश से बाहर भेज देती है।

1933 से '38 तक यूरोप में रहते हुए नेताजी ऑस्ट्रिया, बुल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया, फ्राँस, जर्मनी, हंगरी, आयरलैण्ड, इटली, पोलैण्ड, रूमानिया, स्वीजरलैण्ड, तुर्की और युगोस्लाविया की यात्राएँ करते हैं और यूरोप की राजनीतिक हलचल का गहन अध्ययन करते हैं।

नेताजी भाँप लेते हैं कि एक दूसरे विश्वयुद्ध की पटकथा यूरोप में लिखी जा रही है। वे इस 'भावी' विश्वयुद्ध में ब्रिटेन के शत्रु देशों से हाथ मिलाकर देश को आजाद कराने के बारे में सोचते हैं।

नेताजी के शब्दः

"विश्व में पिछले दो सौ वर्षों में आजादी पाने के लिए जितने भी संघर्ष हुए हैं, उन सबका मैंने गहन अध्ययन किया है और पाया है कि एक भी ऐसा उदाहरण कहीं नहीं है, जहाँ आजादी बिना किसी बाहरी मदद के मिली हो।"

जाहिर है, नेताजी की नजर में भारत को भी अपनी आजादी के लिए किसी और देश से मदद लेनी चाहिए। आखिर किस देश से?

नेताजी की पहली पसन्द है- सोवियत संघ, स्तालिन जहाँ के राष्ट्रपति हैं। नेताजी अनुभव करते हैं कि सोवियत संघ निकट भविष्य में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को चुनौती देने वाला है। (वैसे भी, दोनों परम्परागत शत्रु थे।) उनका यह भी मानना था कि भारत को आजाद कराने के बाद सोवियत संघ भारत में पैर नहीं जमायेगा।

मगर नेताजी को सोवियत संघ जाने के लिए वीसा नहीं दिया जाता है। उन्हें ब्रिटेन भी नहीं जाने दिया जाता है।

यूरोप में ब्रिटिश सरकार ने कोई एक दर्जन जासूस नेताजी की निगरानी में लगा रखे हैं। नेताजी क्या खाते हैं, कहाँ जाते हैं, किन लोगों से मिलते हैं- हर खबर सरकार को मिल रही है।

एमिली शेंकेल प्रसंग

नेताजी की ऑस्ट्रियाई पत्नी एमिली शेंकेल

यहाँ एमिली शेंकेल का जिक्र करना अनुचित नहीं होगा- हालाँकि यह नेताजी का व्यक्तिगत प्रसंग है।

1934 में नेताजी वियेना (ऑस्ट्रिया) में एमिली शेंकेल से मिलते हैं। दरअसल, नेताजी को अपनी पुस्तक 'द इण्डियन स्ट्रगल' के लिए एक स्टेनोग्राफर की जरुरत थी, जो अँग्रेजी जानती हो। इस प्रकार एमिली पहले नेताजी की स्टेनो, फिर सेक्रेटरी बनती है और फिर दोनों एक-दूसरे से प्रेम करने लगते हैं।

अपनी पुस्तक की भूमिका में नेताजी सिर्फ एमिली को ही नाम लेकर धन्यवाद देते हैं (दिनांक 29 नवम्बर 1934)। कई यात्राओं में एमिली नेताजी की हमसफर होती हैं।

26 दिसम्बर 1937 को- एमिली के जन्मदिन पर- नेताजी बैडगैस्टीन में उनसे विवाह करते हैं।

1938 में भारत लौटने के बाद से नेताजी एमिली को नियमित रूप से चिट्ठियाँ लिखते हैं। (उनके 162 पत्रों का संकलन पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ है। हालाँकि दक्षिण-पूर्व एशिया से लिखे गये उनके पत्र इनमें शामिल नहीं हैं- इन पत्रों को द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त होने के बाद ब्रिटिश अधिकारी जब्त कर लेते हैं- वियेना में एमिली के घर की तलाशी के दौरान। ये पत्र अब तक अज्ञात ही हैं।)

नेताजी एमिली शेंकेल के साथ

1941-43 में जर्मनी प्रवास के दौरान नेताजी एमिली शेंकेल के साथ ही बर्लिन में रहते हैं।

1942 के अन्त में एमिली और नेताजी माता-पिता बनते हैं। वे अपनी बेटी का नाम अनिता रखते हैं।

1944 की बरसात में, जब इम्फाल-कोहिमा युद्ध में हार निश्चित जान पड़ती है, तब नेताजी यह महसूस करते हैं वे शायद अब एमिली और अपनी नन्हीं बेटी से कभी न मिल पायें, क्योंकि अगले साल हार तय है और इस हार का मतलब है- उन्हें कहीं अज्ञातवास में जाना पड़ेगा, या जेल में रहना पड़ेगा, या फिर मृत्यु को गले लगाना पड़ेगा।

एक शाम, जब आसमान काले बादलों से घिरा होता है, वे एकान्त पाकर कैप्टन लक्ष्मी विश्वनाथन से कहते हैं, "यूरोप में मैंने कुछ ऐसा किया है, जिसे पता नहीं, भारतवासी कभी समझ पायेंगे या नहीं।" उनका ईशारा एमिली की ओर था कि पता नहीं भारतीय कभी उन्हें 'नेताजी की पत्नी' का दर्जा देंगे या नहीं।

कितना भी तो भारतीयों के लिए यह एक 'गन्धर्व विवाह' था।

लक्ष्मी कहती हैं, "जरूर समझेंगे।"

एमिली शेंकेल बोस तो खैर कभी भारत नहीं आतीं, मगर 1945 में नेहरूजी तथा नेताजी के परिजनों के प्रयासों से बाकायदे एक ट्रस्ट बनाकर एमिली को नियमित आर्थिक मदद दी जाती है, जिसके लिए एमिली नेहरूजी का बाकायदे आभार व्यक्त करती हैं।

नेताजी की बेटी अनिता बोस भारत में- 2005-06

एमिली शेंकेल बोस का निधन वर्ष 1996 में होता है।

नेताजी की बेटी अनिता बोस बाद के दिनों में ऑग्सबर्ग विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र की प्राध्यापिका बनती हैं। जर्मन संसद में ग्रीन पार्टी के सदस्य मार्टिन पाफ (Martin Pfaff) से वे विवाह करती हैं और उनकी तीन सन्तानों- यानि नेताजी के नाती-नतनियों- के नाम होते हैं- थॉमस कृष्णा, माया कैरिना और पीटर अरूण।

अनिता बोस पहली बार 18 वर्ष की उम्र में 1960 में भारत आती हैं और फिर 2005-06 में 63 वर्ष की उम्र में दुबारा भारत आती हैं।

दोनों बार देश उन्हें 'नेताजी की बेटी' का सम्मान देता है।

'अपना रास्ता अलग चुन लो'

नेताजी काँग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन (1938) में

भारत लौटने पर 1938 में गाँधीजी नेताजी को काँग्रेस का अध्यक्ष मनोनीत करते हैं।

'37 में नेहरूजी अध्यक्ष थे, और अब '39 में किसी और की बारी है।

नेताजी चाहते हैं कि प्रगतिशील विचारों वाला कोई व्यक्ति ही अगला अध्यक्ष बने, मगर ऐसा नहीं होते देख वे दुबारा अध्यक्ष बनना चाहते हैं। जबकि काँग्रेस की यह परम्परा बन गयी थी कि गाँधीजी द्वारा मनोनीत व्यक्ति ही अध्यक्ष बनेगा। नेताजी इस परम्परा के खिलाफ चले जाते हैं और नौबत चुनाव की आ जाती है।

आश्चर्यजनक रूप से नेताजी (गाँधीजी द्वारा मनोनीत पट्टाभि सीतारामैया को हराकर) दुबारा काँग्रेस के अध्यक्ष चुन लिये जाते हैं। बाद में गाँधीजी नेताजी के

साथ 'असहयोग' का रवैया अपना लेते हैं। उनके कहने पर महासमिती के 14 में से 12 सदस्य इस्तीफा दे देते हैं, सिर्फ एक ही सदस्य (नेताजी के बड़े भैया) नेताजी के साथ रहते हैं, जबकि नेहरूजी तटस्थता की नीति अपनाते हैं।

नेताजी का कहना था कि जब देश के सबसे महान व्यक्ति (गाँधीजी) का ही समर्थन उन्हें हासिल नहीं है, तो यह पद बेकार है और वे अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे देते हैं।

उधर यूरोप में 1 सितम्बर 1939 को जर्मनी पोलैण्ड पर आक्रमण करता है। दो दिनों बाद ब्रिटेन और फ्राँस जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा करते हैं और इस प्रकार, दूसरे विश्वयुद्ध की शुरुआत हो जाती है।

भारत के वायसराय लॉर्ड लिनलिथगॉ बिना काँग्रेस से परामर्श किये भारत को भी युद्धरत देश घोषित कर देते हैं। लाचार काँग्रेसी नेतागण अब ब्रिटेन को युद्ध में पूर्ण समर्थन देने को राजी हो जाते हैं और बदले में युद्ध के बाद आजादी का वायदा माँगते हैं। ब्रिटिश सरकार इस माँग को ठुकरा देती है।

इधर नेताजी का स्पष्ट मत है कि आजादी भीख माँगकर नहीं लेनी चाहिए। इसकी कीमत ऊँची होती है और कीमत चुकाकर ही इसे हासिल करना चाहिए! उनकी नजर में यह विश्वयुद्ध भारत के लिए एक सुनहरा मौका है- और भारत को ब्रिटेन के शत्रु देशों से हाथ मिलाकर आजादी के लिए 'सैन्य' अभियान चलाना चाहिए।

इस 'हिंसा' भरे प्रस्ताव पर गाँधीजी तथा अन्य नेताओं के साथ नेताजी के मतभेद बढ़ जाते हैं। गाँधीजी स्पष्ट कर देते हैं कि सुभाष, तुम अपना रास्ता अलग चुन लो।

नेताजी भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के माध्यम से (बेशक गुप्त रूप से) स्तालिन को भारत की आजादी में मदद के लिए सन्देश भेजते हैं। सम्भवतः स्तालिन नेताजी को मास्को आने का न्यौता भी देते हैं।

ब्रिटिश सरकार को भनक मिलती है- वह नेताजी को जेल में डालने की जुगत में लग जाती है।

नेताजी द्वारा 'हॉलवेल स्मारक'[1] तोड़ने की घोषणा के बाद सरकार को मौका मिल जाता है और भारत सुरक्षा कानून की धारा- 129 (Defence of India Act,

Article- 129) के तहत 2 जुलाई 1940 को नेताजी को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया जाता है। इस कानून के तहत सुनवाई की गुंजाइश नहीं होती है।

नेताजी समझ जाते हैं कि विश्वयुद्ध समाप्त होने तक सरकार उसे जेल में ही रखने का इरादा रखती है।

अनशन और नजरबन्दी

नेताजी रूग्ण अवस्था में

नेताजी ब्रिटिश सरकार से अनुरोध करते हैं कि या तो अदालत में उन्हें दोषी साबित किया जाय, या फिर रिहा किया जाय। सरकार दोनों में से कुछ भी नहीं करती है।

अन्त में, नेताजी आमरण अनशन कर देते हैं। वे बस जेल से बाहर आना चाहते हैं- जिन्दा या मुर्दा।

ग्यारहवें दिन उनकी तबियत खराब हो जाती है। सरकार जान रही है कि अगर जेल में नेताजी को कुछ हो गया, तो देश की जनता गुस्से में पागल हो जायेगी। सो, 5 दिसम्बर 1940 को उन्हें पैरोल पर रिहा किया जाता है और एल्गिन रोड स्थित उनके घर के बाहर बंगाल सी.आई.डी. के बासठ जवानों को तैनात कर दिया जाता है- कुछ सादे लिबास में और कुछ वर्दी में।

घर आकर नेताजी देश छोड़ने की योजना बनाने लगते हैं- उन्हें लगता है, विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटेन के शत्रु देशों से हाथ मिलाकर ही देश को आजाद कराया जा सकता है- और यह मौका फिर नहीं मिलने वाला है।

फॉरवर्ड ब्लॉक के एक नेता मोहम्मद शरीफ के कहने पर वे दाढ़ी रखनी शुरू कर देते हैं- ताकि अफगानिस्तान के कबायली इलाकों से गुजरने में परेशानी न हो।

‘कलकत्ता पहुँचो’- बोस

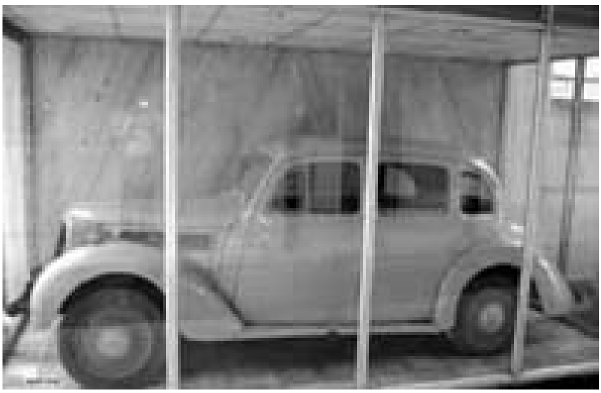

जर्मन कार 'वाँडरर', जिससे नेताजी नजरबन्दी से निकले थे

नौशेरा जिले (NWFP- North West Frontier Province) के बदरशी गाँव में फॉरवर्ड ब्लॉक के नेता मियाँ अकबर शाह को टेलीग्राम मिलता है- ‘‘कलकत्ता पहुँचो’- बोस’ और बयालीस वर्षीय ये खूबसूरत पठान पेशावर से उसी रात फ्रंटियर मेल पकड़ कर रवाना हो जाते हैं।

तीन दिन बाद वे कलकत्ता पहुँचते हैं और मिर्जापुर स्ट्रीट के एक होटल में रुककर चौथे दिन एल्गिन रोड वाले घर में आकर देखते हैं- उनका नेता बिस्तर पर पड़ा है- कमजोर और दाढ़ी बढ़ी हुई।

नेताजी उनसे कहते हैं- मुझे अफगानिस्तान के कबायली इलाके से होकर देश छोड़ना है, मदद चाहिए।

पठान कहते हैं- आप ट्रेन से पेशावर तक पहुँचिए, आगे की जिम्मेवारी मेरी।

और फिर मियाँ अकबर शाह नेताजी को जियाउद्दीन का नाम, एक इंश्योरेन्स कम्पनी के ट्रैवेलिंग इंस्पेक्टर का पेशा सुझाते हैं। पठानों की चाल-ढाल, आदतें, परम्पराएं समझाते हैं। शिशिर के साथ धर्मतल्ला स्ट्रीट की प्रसिद्ध मुस्लिम दुकान ‘वाचेल मोल्ला’ से भेष बदलने के लिए जरूरी सामानों की खरीदारी भी वे कर लाते हैं।

रही बात पश्तो भाषा न जानने की, तो कोई बात नहीं- जियाउद्दीन मूक-बधिर (गूँगा-बहरा) रहेगा। योजना बनाकर मियाँ अकबर शाह लौट जाते हैं- अगली मुलाकात इंशाअल्लाह पेशावर में होगी।

नेताजी पहले अपने भतीजों को, बाद में भैया शरत चन्द्र बोस और भाभी को भरोसे में लेते हैं।

घर के नौकरों में से कुछ सी.आई.डी. से मिले हैं, अतः नेताजी कुछ दिनों के एकान्तवास के नाम पर अपने कमरे में पर्दा डाल लेते हैं कि खाना पर्दे के बाहर ही रख दिया जाय। इन दिनों वे किसी से भी बातचीत नहीं करेंगे।

17 जनवरी की रात वे घर से निकल जाते हैं- जैसा कि शुरू में ही वर्णन किया गया है।

सी.आई.डी. वाले निगरानी कर ही रहे हैं। नेताजी के कमरे में बाकायदे पर्दे के बाहर खाना रखा जा रहा है।

अचानक दसवें दिन घरवाले शोर मचाते हैं- नेताजी कमरे में नहीं हैं!

सी.आई.डी. के हाथ-पाँव सुन्न! ब्रिटिश सरकार तो दो साल तक नहीं समझ पाती है कि यह हुआ कैसे?

(बाद में किसी की चुगलखोरी से नेताजी के भतीजों की संलिप्तता जाहिर होती है और शिशिर बोस को सात साल की सजा हो जाती है। उन्हें अक्तूबर'44 में बदनाम लाहौर जेल भेज दिया जाता है। हालाँकि साल भर के बाद उन्हें रिहा भी कर दिया जाता है।)

कलकत्ता से काबुल

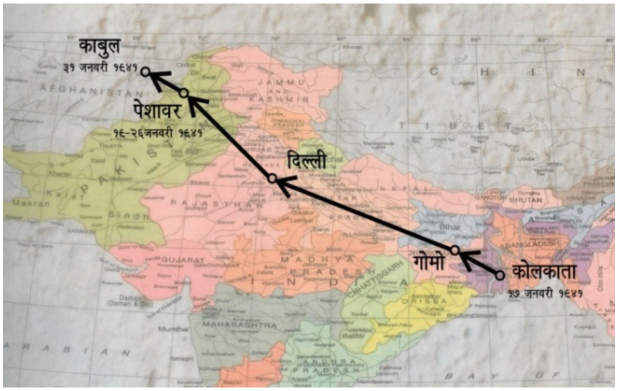

नेताजी की यात्रा: कोलकाता से काबुल तक

शिशिर बोस की कार बरारी आकर रूकती है।

शिशिर ने पहले ही बर्द्धमान तक कार चलाकर 'लाँग ड्राईव' का अभ्यास कर लिया था। रास्ते में कोई परेशानी नहीं हुई- सिवाय एक जंगली इलाके में भैंसों का झुण्ड सामने आ गया था, तब कार की ब्रेक ने सही काम किया।

वहाँ शिशिर अपने बड़े भाई अशोक के घर रूकते हैं। अगली सुबह वहाँ से उनके 'पठान मेहमान' अकेले पैदल घर से निकलते हैं- ताकि नौकरों को सन्देह न हो। बाद में पीछे से शिशिर और उनके भैया-भाभी आकर उन्हें फिर कार में बैठा लेते हैं।

सभी गोमो पहुँचते हैं। आधी रात के बाद खुलने वाली दिल्ली-कालका मेल के लिए पहले दर्जे का टिकट कटाकर नेताजी उसमें बैठ जाते हैं।

दिल्ली से फ्रंटियर मेल पकड़कर नेताजी 19 जनवरी को पेशावर छावनी स्टेशन पर उतरते हैं। मियाँ अकबर शाह, मोहम्मद शाह और भगतराम उन्हें लेकर ताँगेवाले द्वारा सुझाये एक अच्छे मुस्लिम होटल में पहुँचते हैं।

बाद में एक और भरोसेमन्द साथी अबद खान के घर नेताजी को ठहराया जाता है। अबद खान अफगानी पठानों के रीति-रिवाजों के बारे में नेताजी को जानकारी देते हैं- वे उन इलाकों में जा चुके हैं।

26 जनवरी को नेताजी मोहम्मद शाह, भगतराम और एक मार्गदर्शक के साथ कार में अफ्रीदी कबीले की सीमा की ओर रवाना होते हैं।

सीमा के बाद पैदल यात्रा प्रारम्भ होती है। आंशिक रूप से बर्फ से ढके पहाड़ों पर चलते हुए 28 को वे पहले अफगानी गाँव में पहुँचते हैं।

यहाँ से कुछ दूर तक खच्चरों की सवारी करते हुए और बाद में चायपत्ती की बोरियों से लदे एक ट्रक में हिचकोले खाते हुए सभी रात तक जलालाबाद पहुँचते हैं।

जलालाबाद से 30 को काफिला फिर चलता है और पहले ताँगे की और बाद में ट्रक की सवारी करते हुए 31 को काबुल पहुँच जाता है।

"बोस को खोजो और मार डालो"

एक कलाकृति

काबुल में लाहौरी गेट के पास एक सराय में वे लोग ठहरते हैं। इलाका अच्छा नहीं होता।

एक अफगानी पुलिसवाले को उनपर शक होने लगता है। वह बार-बार चक्कर लगाता है। अन्त में नेताजी अपनी हाथघड़ी देकर उससे पीछा छुड़ाते हैं।

नेताजी सोवियत दूतावास से सम्पर्क करते हैं, मगर उन्हें ठण्डा स्वागत मिलता है। स्तालिन ने भले हिटलर से 'अनाक्रमण सन्धि' कर रखी थी, पर हिटलर पर उन्हें भरोसा नहीं था। सोवियत संघ पर नाजी आक्रमण होने की दशा में सोवियत को 'मित्र राष्ट्र' की शरण में जाना पड़ेगा- तब ब्रिटेन और सोवियत एक ही पाले में होंगे। शायद इसीलिए सोवियत दूतावास नेताजी को टाल रहा था।

मगर नेताजी को यूरोप पहुँचना ही था। वे 'धुरी राष्ट्र' के दोनों देशों- जर्मनी और इटली- के दूतावासों से सम्पर्क करते हैं। यहाँ भी देर होती है। इन सबमें डेढ़ महीने बीत जाते हैं- यह नेताजी के लिए व्यग्रता का दौर होता है।

इसी बीच एक इतावली राजनयिक द्वारा भेजे गये सन्देश से नेताजी के काबुल में होने का राज खुल जाता है। भारत में बिजली की एक लहर-सी दौड़ जाती है।

एक ओर- देशवासी खुश हो जाते हैं कि उनका नेता देश को आजाद कराने के लिए किसी खास मिशन पर है, और दूसरी तरफ ब्रिटिश सरकार गुस्से में आग-बबूला हो जाती है।

तुर्की में तैनात अपने गुप्तचर विभाग के दो विशेष एजेण्टों (Special Operations Executives- SOE) को लन्दन गुप्त आदेश जारी करता है- "सुभाष चन्द्र बोस को खोजो और उसकी हत्या कर दो। किसी कीमत पर उसे यूरोप नहीं पहुँचने देना है।"

मगर ये एजेण्ट नेताजी को खोज नहीं पाते हैं- उन्हें क्या पता कि नेताजी यहाँ पाँच फीट साढ़े आठ ईंच ऊँचे अफगानी पठान 'जियाउद्दीन' की वेशभूषा में हैं!

अन्त में इतावली दूतावास 'काउण्ट ऑरलैण्डो माजोत्ता' के पासपोर्ट पर नेताजी को मास्को भेजने की व्यवस्था करता है।

विश्वयुद्ध के साये में

काबुल से बर्लिन: वाया मास्को

नेताजी की यात्रा: काबुल से बर्लिन तक

18 मार्च 1941 को इतावली सज्जन सिन्योर (श्री) 'काउण्ट ऑरलैण्डो माजोत्ता' के पासपोर्ट पर नेताजी काबुल से रवाना होते हैं। डेढ़ महीने की व्यग्रता का दौर समाप्त होता है।

उनके साथ होते हैं डा. वॉयलगर (Dr. Voelger) तथा एक और जर्मन नागरिक।

तार्मीज (उज्बेकिस्तान) से मास्को के लिए ट्रेन खुलती है। 20 मार्च को नेताजी इस ट्रेन में बैठते हैं। रास्ते में जाँच-पड़ताल से बचाने के लिए उन्हें कागजात में वायरलेस ऑपरेटर बताया गया है। वैसे, अफगान राजकुमार आगा खान के समर्थक काबुल से उज्बेकिस्तान की सीमा तक नेताजी को सुरक्षा प्रदान करते हैं, तथा सीमा पार करने के बाद सोवियत गुप्तचर पुलिस (एन.के.वी.डी.) नेताजी को सुरक्षित मास्को तक पहुँचाने की जिम्मेवारी लेती है।

मास्को पहुँचकर नेताजी सोच रहे हैं कि स्तालिन भारत में अपने परम्परागत शत्रु ब्रिटेन का शासन समाप्त करने में जरूर मदद करेंगे, मगर स्तालिन की चिन्ता अभी कुछ और है- उन्हें डर है कि हिटलर की नाजी सेना 'अनाक्रमण सन्धि' का उल्लंघन करते हुए किसी भी वक्त सोवियत संघ पर आक्रमण कर सकती है।

(23 अगस्त 1939 को- विश्वयुद्ध से ठीक पहले यह अनाक्रमण सन्धि की गयी थी- ताकि जर्मनी पश्चिमी यूरोप पर और सोवियत संघ पूर्वी यूरोप पर राज

कर सके। इसके तहत सोवियत संघ अब तक इस्तोनिया, लातविया, लिथुआनिया, फिनलैण्ड, बाल्कन के कुछ क्षेत्र और आधे पोलैण्ड पर कब्जा कर चुका है, जबकि जर्मनी ने बोहेमिया-मोराविया, स्लोवाकिया, आधे पोलैण्ड, डेनमार्क, नॉर्वे, नीदरलैण्ड, बेल्जियम, लक्जमबर्ग और फ्राँस को कब्जा रखा है।)

भारत की आजादी के लिए हिटलर से सैन्य मदद लेने की सलाह के साथ शीघ्र ही नेताजी को जर्मन दूतावास भेज दिया जाता है।[2]

मास्को में जर्मनी के राजदूत काउण्ट वॉन डेर शुलेनबर्ग (Count von der Schulenburg) नेताजी का स्वागत गर्मजोशी से करते हैं। भारत जैसे विशाल देश के महान नेता, जो दो बार भारत की राष्ट्रीय पार्टी के अध्यक्ष रह चुके हों- को अपने पक्ष में रखने के लिए हिटलर और मुसोलिनी तैयार हैं। मगर नेताजी 'नाजीवाद' (नात्सीवाद) और 'फासीवाद' को पसन्द नहीं करते। इनके प्रति अपनी नापसन्द वे लिखकर जाहिर भी कर चुके हैं-

"पहली बार जब 1933 में मैं जर्मनी आया था, मुझे यह आशा थी कि अपने आत्म-सम्मान तथा राष्ट्रीय शक्ति के प्रति सजग यह नया जर्मन राष्ट्र इन्हीं दशाओं में संघर्षरत अन्य देशों के प्रति स्वाभाविक रूप से गहरी सहानुभूति अनुभव करेगा, मगर मुझे अफसोस है कि मैं इस दोषारोपण के साथ आज भारत लौट रहा हूँ कि यह नयी जर्मन राष्ट्रीयता न केवल संकीर्ण और स्वार्थी है, बल्कि उद्दण्ड भी है।"

(25 मार्च, 1936 को विदेशी मामलों के जर्मन अकादमी के डा. थेयरफेल्डर को लिखे पत्र में।)

मगर अन्त में नेताजी फैसला लेते हैं कि देश को आजाद कराने के लिए अगर शैतान से भी हाथ मिलाना पड़े, तो वे मिलायेंगे! और फिर, शुलेनबर्ग द्वारा इन्तजाम किये गये एक विशेष कूरियर हवाई जहाज से नेताजी रोम होते हुए 28 मार्च 1941 को बर्लिन पहुँचते हैं।

करीब छह महीनों तक नेताजी के बर्लिन में होने की खबर को गुप्त ही रखा जाता है।

उधर एस.ओ.ई. (Special Operations Executives) वाले अपने मुख्यालय से पूछते हैं- नेताजी शायद काबुल से यूरोप पहुँच गये हैं, अब क्या आदेश है?

जवाब आता है- पिछला आदेश कायम है। यूरोप में भी सुभाष चन्द्र बोस जहाँ कहीं दिखे, उनकी हत्या कर दी जाय।

'इण्डियन लीजन' के साथ भारत-प्रवेश की योजना

नेताजी 'इण्डियन लीजन' के कुछ सैनिकों के साथ

राजनीतिक कारणों से नेताजी के जर्मनी में होने की खबर को गुप्त रखा जाता है और विदेश विभाग को नेताजी का ध्यान रखने के लिए कहा जाता है। उन्हें 'सिन्योर ऑरलैण्डो माजोत्ता' या 'हिज एक्सेलेन्सी माजोत्ता' के नाम से ही सम्बोधित किया जाता है।

मगर नेताजी कार्रवाई के लिए व्यग्र हैं।

9 अप्रैल 1941 को नेताजी जर्मन सरकार के सामने अपना वक्तव्य (Memorandum) प्रस्तुत करते हैं, जिसमें धुरी राष्ट्र और भारत के बीच सहयोग, यूरोप (जहाँ तक हो सके, बर्लिन) में 'स्वतंत्र भारत सरकार' के गठन, एक स्वतंत्र भारत रेडियो प्रसारण, अफगानिस्तान (काबुल) में भूमिगत कार्रवाई, ऋण के रूप में (इस) स्वतंत्र भारत सरकार को जर्मन आर्थिक सहायता और भारत में ब्रिटिश सेना को हराने के लिए जर्मन सेना की मदद का जिक्र होता है। इसी के साथ दिये गये परिशिष्ट में जिक्र होता है कि भारत और अरब देशों की आजादी की घोषणा जल्दी ही की जाय।

इस वक्तव्य पर फैसला लेने में जर्मन सरकार काफी देर करती है। नेताजी परेशान हो जाते हैं। विदेश विभाग के अधिकारी उन्हें सान्त्वना देते हैं।

अन्त में, जर्मनी नेताजी को बिना शर्त पूर्ण समर्थन देने के लिए राजी होता है। 'फ्री इण्डिया सेण्टर' और 'फ्री इण्डिया रेडियो' (आजाद हिन्द रेडियो) का गठन होता है। इन संस्थाओं को चलाने के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था की जाती है और नेताजी को इन्हें चलाने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की जाती है। खुद नेताजी को गाड़ी-बँगला सब मिला होता है।

करार के अनुसार, देश के आजाद होने के बाद नेताजी जर्मनी का सारा ऋण चुका देंगे।

2 नवम्बर 1941 को सेण्टर की पहली बैठक में चार ऐतिहासिक निर्णय लिये जाते हैं- 1. 'जय हिन्द' अभिवादन का तरीका होगा, 2. 'जन-गण-मन' राष्ट्रगीत होगा[3], 3. हिन्दुस्तानी (उर्दू-मिश्रित हिन्दी) राष्ट्रभाषा होगी, और 4. नेताजी को 'नेताजी' के नाम से सम्बोधित किया जायेगा। ('नेताजी' शब्द को जर्मन शब्द 'फ्यूहरर' का समानार्थी माना जा सकता है, जिसका प्रयोग हिटलर के लिए किया जाता था।)

इसके बाद नेताजी खुद आजाद हिन्द रेडियो पर भाषण देकर दुनिया के सामने प्रकट होते हैं। सारे देश में खुशी की लहर दौड़ जाती है- कि उनका नेता देश को आजाद कराने के लिए अब जर्मन सेना के साथ भारत आयेगा। यह रेडियो कई भारतीय भाषाओं में नियमित प्रसारण आरम्भ करता है। नेताजी के लिए भारत से जुड़े रहने का यह जरिया बन जाता है।

नेताजी द्वारा दिये गये विवरण में 'भारतीय मुक्ती वाहिनी' (Liberation Army of India) के गठन का जिक्र नहीं होता है। दरअसल, बाद में, रेडियो स्टेशन पर कुछ भारतीय युद्धबन्दियों से मिलने के बाद उनके मन में अपनी सेना गठित करने का विचार आता है। ये भारतीय सैनिक उत्तरी अफ्रिका में ब्रिटेन की ओर से लड़ते

हुए 'धुरी राष्ट्र' की सेना द्वारा बन्दी बनाये गये थे। (फील्डमार्शल रोमेल के नेतृत्व में धुरी राष्ट्र की सेना वहाँ विजय प्राप्त कर रही होती है।) इन्हें रेडियो स्टेशन लाया जाता था- बी.बी.सी. द्वारा हिन्दुस्तानी भाषाओं में प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों को समझने के लिए।

हिटलर नेताजी के विचार से सहमत दीखते हैं और नेताजी दिसम्बर' 41 में युद्धबन्दी शिविर में जाकर भारतीय सैनिकों से बातचीत करते हैं। इसके अलावे, बर्लिन में पढ़ाई कर रहे चालीस भारतीय युवक भी उत्साह दिखाते हैं- नेताजी के सचिव बन गये आबिद हसन इन्हीं में से एक होते हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान जर्मन महिलाओं से विवाह कर वहीं बस गये भारतीय सैनिकों की सन्तानों का भी साथ नेताजी को मिलता है।

25 दिसम्बर 1941 को पहले बैच के रूप में 10 छात्रों तथा 5 युद्धबन्दी सैनिकों को नेताजी प्रशिक्षण के लिए फ्रैंकेनबर्ग रवाना करते हैं- इन्हें जर्मन सेना (Wehrmacht) द्वारा बिलकुल जर्मन तरीके से प्रशिक्षण दिया जायेगा।

जर्मन सरकार के साथ करार हो गया है कि इन भारतीय सैनिकों को इन्फैण्ट्री की हर शाखा में प्रशिक्षण दिया जायेगा, जर्मन सेना के साथ इन्हें मिलाया नहीं जायेगा, भारत के अलावे इन्हें किसी और सीमा पर लड़ने के लिए नहीं भेजा जायेगा- हालाँकि अपनी रक्षा के लिए ये कहीं भी लड़ सकेंगे, और इन्हें हर वो वेतन-भत्ता-सुविधा मिलेगी, जो जर्मन सैनिकों को प्राप्य है।

ये सैनिक वायरलेस, डिमोलिशन आदि के अलावे घुड़सवारी, पर्वतारोहण, पैराशूट आदि का भी कोर्स करते हैं, और पहले बैच वाले बाद में एन.जी. स्वामी तथा आबिद हसन के साथ मिलकर युद्धबन्दी शिविर में से अगले

भारतीय सैनिकों का चयन भी करते हैं।

नेताजी सैन्य पृष्ठभूमि से नहीं हैं, इसलिए अनुभव के लिए वे खुद भी सैन्य प्रशिक्षण लेते हैं।

अफ्रिका तथा इटली से नये भारतीय युद्धबन्दियों को भी तुरन्त शिविरों में मँगवाया जाता है। इस प्रकार, भारतीय सैनिकों की एक सैन्य टुकड़ी "इण्डियन लीजन" (या आजाद हिन्द लीजन, जर्मन में- Legion Freies Indien) का गठन होता है।

अक्तूबर' 43 में कुछ भारतीय एन.सी.ओ. (नॉन कमीशण्ड ऑफिसर) को कमीशन देकर लीजन में अधिकारी बनाया जाता है। लीजन के पास 81 मोटर गाड़ियाँ और 700 घोड़े होते हैं। इस रेजीमेण्ट में 3 बटालियन होते हैं और प्रत्येक बटालियन में 4 कम्पनियाँ। 'आजाद हिन्द', 'शेर-ए-हिन्द', 'सरदार-ए-जंग', 'वीर-ए-हिन्द' और 'शहीद-ए-भारत' लीजन के सम्मान एवं पदक होते हैं।

जब लीजन के सैनिकों की संख्या बढ़ जाती है, तब फ्री इण्डिया सेण्टर के पास इन्हें वेतन देने के लिए पैसों की कमी हो जाती है। अब एक ही रास्ता था कि जर्मन सेना इन्हें वेतन दे। ऐसे में इन सैनिकों को जर्मनी और हिटलर के प्रति वफादारी की शपथ लेनी होगी।

अपने अधिकारी की तलवार पर हाथ रखकर चार-चार की संख्या में भारतीय सैनिक जर्मन भाषा में यह शपथ लेते हैं- "मैं ईश्वर के नाम पर यह पवित्र शपथ लेता हूँ कि सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में भारत की आजादी के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई में जर्मन राज्य तथा जनता के नेता के रूप में जर्मन सेना के सेनापति एडॉल्फ हिटलर के आदेशों का पालन करूँगा, और एक बहादूर सैनिक के रूप में इस शपथ की रक्षा में अपने प्राण त्यागने को तत्पर रहूँगा।"

अब यह टुकड़ी जर्मन सेना की 950वीं इण्डियन इन्फैण्ट्री रेजीमेण्ट (Indisches Infanterie Regiment 950) बन जाती है। नेताजी इस रेजीमेण्ट को इसका चिह्न - तिरंगे के बीच में छलांग लगाता शेर- प्रदान करते हैं, और कहते हैं-

“आजाद भारत के इतिहास में हमारा नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा, हर एक शहीद के लिए वहाँ एक स्मारक होगा। जब हम सब एक साथ भारत में प्रवेश करेंगे, तब मैं इस सेना का नेतृत्व करूँगा।”

जहाँ ब्रिटिश सेना भारतीय सैनिकों को धर्म तथा क्षेत्रीयता के आधार पर बाँटकर रखती थी, वहीं नेताजी सभी धर्मों तथा क्षेत्रों के सैनिकों को मिला-जुला कर रखते हैं। एक कम्पनी में मुस्लिम, हिन्दू, सिक्ख, जाट, राजपूत, मराठा और गढ़वाली सभी साथ-साथ होते हैं। (वैसे, लीजन के दो-तिहाई सैनिक मुस्लिम थे तथा एक तिहाई हिन्दू।)

(बाद के दिनों में सिंगापुर में आजाद हिन्द फौज के गठन में भी किसी प्रकार के भेद-भाव और अलगाव को नहीं अपनाया जाता और नेताजी की इस भावना की गाँधीजी भी तारीफ करते हैं।)

हिटलर के रणनीतिकारों ने हिसाब लगाया था कि ’42-’43 तक ब्रिटेन, सोवियत संघ और अमेरिका- तीनों युद्ध के लिए तैयार हो जायेंगे, अतः ‘पहले ही’ इन्हें मात देना जरूरी है। जून’40 तक फ्राँस को जीतने के बाद हिटलर का अगला निशाना ब्रिटेन बना। मगर ‘इंगलिश चैनल’ और इसमें तैनात शक्तिशाली ब्रिटिश नौसेना के चलते हिटलर ने लन्दन पर पहले भीषण हवाई बमबारी का फैसला लिया और ‘ऑपरेशन सी-लायन’ (समुद्री आक्रमण) को स्थगित रखा।

10 जुलाई से ब्रिटेन पर हवाई बमबारी शुरू होती है। ब्रिटेन का रॉयल एयर फोर्स संख्या बल में चौथाई होने

के बावजूद जबर्दस्त प्रतिआक्रमण कर जर्मनी को पर्याप्त नुक्सान पहुँचाता है। जब रॉयल एयर फोर्स का प्रतिरोध ऐसा था, तो रॉयल नेवी का कैसा होगा? जर्मनी की नौसेना अपेक्षाकृत कमजोर थी। अतः सितम्बर के अन्त में ब्रिटेन जीतने के अभियान को अधूरा छोड़ दिया जाता है।

अब सोवियत संघ की बारी थी। आक्रमण की तैयारियाँ चल रही हैं- नाजी सेना तीव्र और निष्ठुर आक्रमण करती है। 1941 में इसी स्थिति को भाँपकर स्तालिन नेताजी की मदद नहीं कर पाये थे। सोवियत संघ पर आक्रमण का एक और कारण भी था- हिटलर यहूदियों, जिप्सियों, स्लाव, होमोसेक्सुअल, कमजोर और अपंगों के साथ-साथ साम्यवादियों से भी नफरत करते थे।

22 जून 1941 को- तब तक नेताजी के जर्मनी आये हुए ढाई महीने हुए थे- जर्मनी सोवियत संघ पर आक्रमण करता है- अक्तूबर' 41 तक मास्को को जीतने के इरादे से। हिटलर और स्तालिन-जैसे दो निर्दयी, कठोर और बर्बर शासक जब युद्धभूमि में आमने-सामने हों, तो एक अतिशय रक्तरंजित युद्ध की उम्मीद की जा सकती है। पहले हफ्ते में ही डेढ़ लाख सोवियत सैनिक हताहत होते हैं, बाद में दोनों तरफ के और भी लाखों मरते हैं।

नेताजी हिटलर के सोवियत आक्रमण से सहमत नहीं थे, मगर इस वक्त उनका मकसद सिर्फ और सिर्फ भारत की आजादी थी।

नेताजी योजना बनाते हैं कि 'इण्डियन लीजन' के सैनिक नाजी सेना के पीछे रहते हुए सोवियत संघ में प्रवेश करेंगे और नाजी सेना की यह टुकड़ी उज्बेकिस्तान की ओर मुड़ जायेगी। अफगानिस्तान की सीमा पर भारत में प्रवेश करते समय लीजन के सैनिक आगे हो जायेंगे और जर्मन सैनिक पीछे।

लीजन के कुछ सैनिकों को पैराशूट द्वारा पर्शिया (अब ईरान) में भी उतारने की योजना है, जो बलूचिस्तान के रास्ते भारत में प्रवेश करेंगे और ब्रिटिश छावनियों में गुप्त रूप से घुसकर उनके युद्ध-सामग्रियों को नष्ट (सैबोटाज) करेंगे।